नुष्यों को अन्त में, एक आपही प्राप्त होते हो जैसे नदियां टेढ़ी सीधी बहती हुई समुद्रमें मिलती हैं ॥ ७ ॥

महोक्षः खट्वांगं परशुरजिनं भस्म फणिनः, कपालं चेती यत्तव वरद तन्त्रोप करणम् ॥ सुरास्तांतां मृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां न हि स्वात्मारामं विषय मृगतृष्णा भ्रमयति ॥ ८ ॥

हे भगवन ! महोक्ष याने बूढा वृषभ, खटिया को पावा परशु, गजचर्म, भस्म, सर्प कपाल इत्यादि तो आपकी सामग्री है. परंतु हे वरद ! देवता लोग तां तां दावे इन अपनी २ समृद्धि आपके कृपा दृष्टि से बताई हुई को धारण करते हैं तो आप क्यों नहीं

श्रीशिवमहिम्न स्तोत्र

प्रारम्भः

श्लोकः ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ पुष्पदन्त उवाच॥
महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यस-
दृशी, स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्ना
स्त्वयिगिरः॥ अथावाच्यः सर्वः स्वम-
ति परिणामावधिगृणन्, ममाप्येषस्तो
त्रे हरनिरपवादः परिकरः ॥१॥

पृथक २ वाणी कहते हैं सो भलेही कहो पर
न्तु हम नहीं जानते कि ऐशा कौन तत्व है
जोकि आप नहीं हो ॥ २६ ॥

त्रयींतिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीन-
पिसुरानकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्ण
विकृति॥ तुरीयं ते धाम ध्वनिभिर व-
रुंधानमणुभिः समस्तव्यस्तंत्वां शरण-
दगृणात्योमितिपदम् ॥ २७ ॥

हे शरण देने वाले? ॐ यह ब्रह्मपद सम्पूर्ण
व्यस्त याने अ, उ, म, सो आपही की तीनों
वर्णों करके त्रयी याने वेदत्रयी (ऋग, युग,
साम) और तीनों व्रती अर्थात् (उदात्त अ-
नुदात्त स्वरित) अथवा जाग्रदादि अवस्था
इनका, और स्वर्ग, मृत्यु पाताल और तीनों

हे हर ! याने जगतकी पीड़ाको हरने वाले महादेवजी आपकी महिमा के पारको किंचित् भी न जानते ऐसे अज्ञानियों करके गाई हुई स्तुति यदि आपके असमान(अयोग्य)होवे तो ब्रह्मादिकों की भी वाणी गाई हुई स्तुति हैं वे सब निष्फल होजावैंगी तिससे हमारा अधिकार न होगा तो उनका (ब्रह्मादिकोंका) भी अधिकार न होगा तो हम दोनों समानहुए तथापि यह सर्वजन अपनी बुद्धिके परिणाम याने परिपाकसों ही अवधि अर्थात् सीमा वहां तक कहना अवश्य है इससे आप करके अवाच्य अनुग्रह करने योग्यही है यदि ऐसाहै तो मेरा भी इस स्तोत्रके विषे जो आरम्भ है वो निरपवाद होवे यह चाहता हूं ॥१॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनस

हो; प्रकर्ष से और तीनों गुणों से (सत रज तम) परे जो अनिर्वचनीय पद तिसमें जो शिवरूप आपको वारम्वार नमस्कार हो॥३०॥

कृशपरिणतिचेतःक्लेशवश्यं क्व चेदं क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः इति चकितममंदीकृत्य मां भक्तिराधाद्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम्॥३१

हे भगवान्! कृश है परिमाण जिसको यानें अत्यन्त मन्द और क्लेशके आधीन ऐसा मेरा चित्त कहां! और गुणोंकी सीमाको उल्लङ्घने वाली ऐसी आपकी ऋद्धि कहां ऐसे चकित हुए मुझको आपके चरण की भक्ति अमन्द करके हे वरद! वाक्य रूप पुष्प से पूजा करती भई॥ ३१ ॥

र्यो रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते
श्रुतिरपि ॥ स कस्य स्तोतव्यः कतिवि
धगुणः कस्यविषयः पदेत्वर्वाचीने पत-
तिनमनः कस्यनवचः ॥२॥

हे प्रभो आपकी महिमा वाणी और मनसे
परे है जिससे वेदभी चकित हुये कहते हैं सो
अतद्व्यावृत्ति करके याने सो नहीं २ ऐसा अ-
नुमानसे आपकी महिमा को वेद जानतेहैं सो
एतादृश महिमावालेआप किसीसे स्तुति किये
जाओ कौन जाने आप हैं कितने गुणहैं और
आप किस करके ग्राह्य हो परन्तु यह आपके
स्थिति प्रलय करके विषय में, जिसका मन
अथवा वाणी न पड़े याने आपके गुण सर्व
अपनी बुद्धि के अनुसार कहा चाहतेहैं सो मैं
भी कुछ प्रार्थना करता हूं ॥२॥

असुरसुर मुनीन्द्रोंकरके पूजित, औरविख्यातमहिमा वालेऐसे ईश्वरचन्द्रमौलिके इसस्तोत्रको अलघुवृत्तयानेबड़े (शिखरिणी) वृत्तोंकरके सकलगुणश्रेष्ठपुष्पदंतनामकगंधर्वकरताभया॥

अहरहरनवद्य धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्पठति परम भक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः॥ स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ३९

शुद्ध चित्तहोइस अनवद्य महादेवजीकेस्तोत्रको जो पुरुष प्रतिदिनपरम भक्तिसे पढ़ताहै सो इसलोकमेंबहुत्वकोप्राप्तहोताहै और पुत्रवानहोकरकीर्तिमान् होताहैऔरमरेपीछे रुद्र लोकमें शिवके तुल्य अर्थात् शिव स्वरूप होताहै॥

दीक्षा दानंतपस्तीर्थज्ञानंयागादिकाः क्रियाः॥ महिम्न स्तवपाठस्यकलां नार्हंति षोडशीम्॥

मधुस्फीताः वाचः परमममृतंनिर्मित-
वत, स्तवब्रह्मन्किंवागपिसुरगुरोर्विस्म
य पदम् । ममत्वेतां वाणीं गुण कथन
पुण्येन भवतः, पुनामीत्यर्थेस्मिन्पुरम-
थन बुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! परम अमृतरूप मधु सदृश मि-
ष्ट याले कोमल देवरूप वाणी रचते भये, आ-
पको ब्रह्माजी की भी वाणी क्या विस्मयपद है
यदि ब्रह्मादिकों की वाणी तुच्छ है तो पुनः मैं
क्या स्तुति करता हूं । तो ऐसा नहीं. हे त्रि
पुरमथन ! मैं तो केवल आपके पवित्र करने
वाले गुणोंके कथन से अपनी बुद्धिको पवित्र
करताहूं मेरी मति तो ऐसी निश्चित हुईहै ॥

॥ तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् ।

त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषुगुणभिन्नासुतनुषु ॥ अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं । विहंतुंव्याक्रोशींविदधत इहैके जडधियः ॥ ४ ॥

हे वरको देनवाले । जो जगत्की उत्पत्ति रक्षा प्रलय करने वाला ऐश्वर्य है सो गुणों से भिन्नवाली ब्रह्मा, विष्णु महेश इन तीन देवों में माना गया है वस्तुतः आप एक ही हो, आपका ऐश्वर्य कैसा है जो वेदत्रयी में प्रसूत है हे भगवन ! कई एक जड़ बुद्धिवाले (मीमांसक) आपके ऐश्वर्यको न सहन करते हुये आपकी निन्दा करते हैं जो अभव्य पापियों कर के रमणीय आप के इस ऐश्वर्य में रमण न कर सकैं ऐसा अरमणीय निन्दा करते हैं

कीमीहः किंकायः सखलुकिमुपाय
स्त्रिभुवनं । किमाधारोधातासृजतिकि-
मुपादानमितिच ।। अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्य
नवसरदुःस्थोहतधियः । कुतर्कोयंका-
श्चिन्मुखरयतिमोहायजगतः ।। ५ ।।

निश्चय करके विधाता जगत को सृजता है परन्तु किस चेष्टा में सृजताहै । तैसेही क्या आधार उसको है ? और क्या उपादान है, हे भगवन् ! एतादृश जो संदेह करतेहैं, सो यह कुतर्क कोई मंदमति वालों को ही ठगता है याने तिनके ही मतमें समाता है किस लिये कि जगत के मोहके लिये वह कुतर्क कैसाकि जोतर्क न किया जावे ऐसे ऐश्वर्य वाले आप

अवसर को नहीं प्राप्त होसके ऐसे अतुल प्रतापी आप हैं ॥ ५ ॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगतामधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति॥ अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरतइमे ॥ ६ ॥

हे अवयव वाले लोक (शरीर) क्या अजन्मा हैं जगत की रचना क्या रचना करने वाले को निरादर करके होती है। और जो विधाता यदि न समर्थ होगा तो क्या होगा और जगके रचने में उस के पास कौनसा साधन है। ऐसे मंद मतिवाले आपके लिये

जो संदेह करते हैं सो व्यर्थ है, हे अमरवर। (देव श्रेष्ठ)। मुझे तो आपके विषे कुछ संदेह नहीं है॥ ६॥

त्रयीसांख्यंयोगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमितिच॥ रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेकोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णवइव॥ ७॥

हे भगवान। वेदत्रयी, सांख्य, योग, शैवमत वैष्णवमत, ऐसे भिन्न भिन्न मत होने से उन मतों के विषे कोई कहते हैं वैष्णव अच्छा है कोई कहते हैं शैवमत ऐसे रुचिकी विचित्रतासे सीधे टेढ़े मार्ग में प्रवृत्त हुए म-

भोगते हो तो कहते हैं कि स्वात्माराम यानि योगिजनों को विषयरूप मृगतृष्णा नहीं भ्रमाती है ॥ ८ ॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं, परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये। समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव, स्तुवन् जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! कोई यह सम्पूर्ण जगत को ध्रुव कहते हैं कोई अध्रुव कहते हैं, कोई जगत के विषय में ध्रुव अध्रुव याने नित्य अनित्य कहते हैं ऐसे यह विपरीत विषय वाले इस जगत में तिन अनेक मतिवादियों करके विस्मत हुआ मैं आपकी स्तुति करने में लजाता

हूं यह वाचालता ढिठाई नहीं है किन्तु वो मुझको प्रेरणा करती है ॥ ९ ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिंचो हरिरधःपरिच्छेत्तुंयातावनलमनलस्कंधवपुषः॥ततोभक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिशयत् स्वयंतस्थेताभ्यांतवकिमनुवृत्तिर्नफलति ॥ १० ॥

हे भगवन् ऊपर को विरंचि, और नीचेको विष्णु ऐसे ये दोनों आपके ऐश्वर्यको ठहराने लगे सो असमर्थ हुए, आप कैसे हैं अनल याने तेज रूप शरीर पुनःहे देव ! भक्ति श्रद्धा करके स्तवन करने से तिन दोनों के लिये आप प्रत्यक्षदर्शन देते भये सो आप-की सेवा क्या नहीं फलती ! अर्थात् फलती है ॥ १० ॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवन मवैरव्यतिकरं दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ॥ शिरः पद्म श्रेणीरचितचरणांभोरुहबलेः स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ ११ ॥

हे त्रिपुरहर ! जो रावण वैरियों के सिवाय त्रिभुवन के राज्य को प्राप्त होकर बाहुओं को धारण करता भया वे कैसे बाहु रणकंडू के परवश याने युद्ध को चाहते, सो यह आपकी स्थिर भक्ति का ही विलासमात्र है, वो भक्ती कैसी कि अपने मस्तककी पंक्ती आपके चरण में समर्पण करी ॥ ११ ॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजव-

नावज्ञात्कैलासेपित्वदधिवसतौ विक्रमयतः॥ अलभ्या पातालेप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि। प्रतिष्ठात्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यतिखलः ॥

हे भगवन् ! आपके कैलास में रहते हुए भी अपने भुजबलको अंदाज रहा ऐसे रावण की पाताल में प्रतिष्ठा न हुई वह भुजबल कैसे हैं कि आपके सेवाही से प्राप्त हुआ है पराक्रम जिनमें और सहजही चलाये हुए पैरके अंगुष्ठ से दबगया सारांश यह है कि जब रावण कैलास पर्वत उठाने लगा तब आप ने पैरका अंगूठा हिलाया त्योंही उसकी भुजायें दब गईं उस समय पातालके लोग हँसने लगे इस प्रकार रावणकी श्री बिगडगई दुर्जन जो

हुई सो ऐश्वर्य वाले होने से मोह को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि
सती । मधश्चक्रे बाणः परिजन विधे-
य त्रिभुवनः ॥ न तच्चित्रं तस्मिन् वरि-
वसितरि त्वच्चरणयोर्न कस्याप्युन्नत्यै
भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥

हे प्रभो ! जो बाणासुर सुत्रामा याने इन्द्र तिसकी वृद्धिगत हुई समृद्धि याने (ऐश्वर्य) तिसको दबाता भया याने तुच्छ किया कैसा वह कि स्वाधीन है त्रिभुवन जिसके, सो तिस में आश्चर्य नहीं क्योंकि वह तो आपके चरण में रहता था तो आपको नमस्कार न किये हुए किसी की उन्नति नहीं होती है ॥ ३ ॥

अकांड ब्रह्मांड क्षय चकितदेवासुर कृपा । विधेयस्यासीद्य त्रिनयन विषं संहृतवतः । स कल्माषः कंठे तव न कुरुते न श्रियमहो विकारोपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः ॥

हे त्रिनयन ! समस्तब्रह्माण्डका क्षयहोनेके डरसे चकित हुए देव, तथा राक्षस तिनपरकृपा करने वाले आप कालकूट विषको पीगए धारणकिये हुए तिसका आपके कंठमें जो नीलत्वहै सो क्या नहीं शोभताहै किन्तु वह भी शोभता है क्योंकि त्रिभुवन के भय होने के भयसे दुःखित ऐसे आपके कण्ठमें कालापन वर्णन करने योग्य है, तिस करके आप नीलकण्ठ कहाते हैं ॥१४॥

असिद्धार्थानैव क्वचिदपि सदेवा सुरनरे। निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः। स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत। स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥

हे ईश ! सम्पूर्ण जगतको जीतने वाले जिसे काम देवके विशिख अर्थात् वाण, देव असुर मनुष्य आदि सब संसार में कहीं भी अपने अर्थ को सिद्ध किये बिना नहीं मुडे ऐसा वह मदन आप को इतर देवताओं के समान देखता हुआ स्मर्तव्य हुआ दग्ध हो गया ॥ १५ ॥

मही पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं पदं विष्णोर्भ्राम्यद् भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्। मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटा

ताडितपदा, जगद्रक्षायैत्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! आप जगत रक्षा के अर्थ नाचते हो आपकी उलटी विभूती है, क्योंकि पृथ्वी जोहै सो आपके पदाघातसे याने पैर चलानेसे संशय पदको प्राप्त होतीहै याने मैं धस न जाऊं । और आपकी भ्रमण करतीहुई अर्गला सरीखी भुजाओं से डगमगाते तारागणों वाला आकाश दुखी होता और चंचल जटाओं करके ताडित हुआ स्वर्ग वारम्बारथक जाता है ॥ १६ ॥

वियद्व्यापी तारागण गुणितफेनोद्गमरुचिः, प्रवाहो वारांयः पृषतलघुदृष्टः सिरसिते ॥ जगद्द्वीपाकारंजलधिव-

लयंतेन कृतमि त्यनेनेवोन्नेयं धृतम
हिमदिव्यंतववपुः ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! जो जलका प्रवाह आकाशसा व्याप्त और तारागणोंसे गुणितयाने गिना हुआ फेन उठने की कांति जिसकी सो आपके मस्त कूपर बिंदुसमान छोटासा दीख पड़ा औरउस करके यह जगत द्वीपाकार समुद्रसे घिराहुआ कियागया इसकरके दीप्त महिमा धारी आप का शरीर उत्तम जान लेना चाहिये ॥ १७ ॥

रथः क्षोणी यंता शतधृतिरगेन्द्रो ध
नुरथो रथांगे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः
शरइति ॥ दिधक्षोस्ते कोयं त्रिपुरतृ
णमाडंबर विधि र्विधेयैः क्रीडंत्योनख
लुपरतंत्राःप्रभुधियः ॥ १८ ॥

हे महादेव! तृणके समान त्रिपुरासुरकोभस्म करनेकी इच्छाकरतेहुए आपकाक्या! यहआडंबरयाने बखेडा करना देखो पृथ्वी तो रथ ब्रह्मासारथी अगेंद्र याने पर्वतोंका राजा धनुष सूर्य चन्द्र रथके चक्र और चक्रपाणि (चक्रहै हाथमें जिसके ऐसा) विष्णु सोही बाण बनाया यहतो ठीकहै क्योंकि भक्तोंके साथ क्रीडा करतीहुई प्रभुओंकी बुद्धियां निश्चयकरके परतन्त्र याने पराधीन नहीं होती है ॥ १८ ॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयोर्यदेकोनेतस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ॥ गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा, त्रयाणांरक्षायैत्रिपुरहरजागर्तिजगताम् ॥ १९ ॥

हे त्रिपुहर ! हरि याने विष्णु आपके चरण में सहस्र कमलों को वलि याने भेट रखकर पूजन करतेथे सो तिनमें जब एक ऊन याने एक कम हुआ तब अपने नेत्रकमलको निकालते भये तब भक्तिका उद्रेक याने वुद्धीके परिमाणको प्राप्तहोताहुआ (यह भक्तकी सीमा हुई) सो सुदर्शनचक्र होकर स्वर्ग मृत्यु, पाताल ऐसें त्रिभुवनकी रक्षाके अर्थ जागृत सो केवल यह आपका अनुग्रह है ॥ १९ ॥

क्रतौ सुप्तेजाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते । अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं श्रुतौश्रद्धांबध्वादृढपरिकरःकर्म सुजन ॥ २० ॥

हे भगवान्! क्रतु अर्थात् यज्ञ सो किसी उपद्रव से नष्टभये संते क्रतुमता याने यज्ञ करने वालोंके फल आपही जागृत रहतेहो नहींतो प्र-ध्वस्त (नष्ट) हुआ कर्म पुरुषके आराधन वि-ना फलीभूत होगा, इससे आपको यज्ञफलदेने के प्रतिभू अर्थात् मध्यस्थ समझकर यह जन्म समूह कर्म करनेमें दृढ़ परिकर याने मजबूत कमर बांधरहाहै, क्योंकि मुख्य फलदाता आपही हो ॥ २० ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्त-नुभृतामृषीणामार्त्विज्यंशरणदसदस्याः सुरगणाः क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलवि-धानव्यसनिनो ध्रुवंकर्तुःश्रद्धाविधुरम-भिचारायहिमखाः ॥ २१ ॥

हे शरणद! जो दक्ष क्रिया कुशल और शरीरियोंमें दक्षपति था. कि जिस दक्ष प्रजापतिके यज्ञ में ऋषियोंको आर्त्विज्य था, सुरगुण सदस्य (सभ्य) थे ऐसे दक्षके यज्ञके फलको देना यही है व्यसन (चिन्ता) जिनको ऐसे आपसे यज्ञका नाश हुआ इससे यह प्रगट हुआ कि श्रद्धा विना करने वाले के यज्ञ विपरीत फल देने वाला होताहै ॥ २१ ॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरंगतं रोहिद्भूतांरिरमयिषुमृष्य स्यवपुषा॥धनुष्पाणेर्यातं दिवमपिस पत्राकृतममुंत्रसंतंतेद्यापित्यजाति न मृगव्याधरभसः ॥ २२ ॥

हे नाथ ! आपका आखेट खेलना कैसा है

कि डरेहुए प्रजानाथ याने ब्रह्माजी को स्वर्ग गयेहुए को अद्यापिभी नहीं छोडता, वे कैसे ब्रह्माजीहैंकिवलात्काररसेरममाणहोनेकी इच्छा करते हुए तिससे डरीहुई हरिणी भईअपनी कन्यासे हरिणहोकर भीपुनः विषय करना चाहते भये और आप धनुषहाथ में लिये हुएआपसे डरता और कमाके स्वाधीनहो रहाहै॥ ३१॥

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमन्हाय तृणवत् पुरःप्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि॥ यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत-देहार्द्धघटना दवैति त्वामद्धा बतवरद मुग्धा युवतयः॥ ३२॥

हे पुरमथन ! आपने पुष्पायुध याने मदन को तृणके समान शीघ्रजलाकरछार किया यह

प्रत्यक्ष देखते भी पुनः देवीपार्वती, आपको स्त्रैण याने अपने वश जानतीहै यह अत्यन्त खेद की बातहै वह देवी कैसीहै कि अपनी सुन्दरता को प्रशंसा करतीहै वह मदन कैसाहै कि धनुष को धारण करनेवाला किस हेतुसे ! तो निरंतर देहार्ध घटना याने आधेशरीर में अपने को राखने से हे वरदे ? युवतिजन (स्त्रियां) प्रायः मूर्खही रहती हैं ॥ २३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीडास्मरहरापिशाचाः सहचरा श्चिताभस्मालेपःस्रगपिनृक- रोटीपरिकरः॥अमंगल्यंशीलंतवभवतु नामैवमखिलंतथापिस्मर्तृणांवरदपरमं मंगलमसि ॥ २४ ॥

हे स्मरहर ! आपका श्मशानमें रहना, भूत

प्रेत पिशाच ये आपके साथ रहनेवाले, और शरीरमें चिताके भस्मका लेपन नरमुंडों की माला इसप्रकार आपका स्वभाव अमंगल है, तथापि स्मरण करने वालोंके हे वरद ! आप परम मंगल रूप हैं ॥ २४ ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमविधायात्तमरुतः प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः ॥ यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये दधत्यंतस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥

हे भगवन् ! प्राणायमादि करने वाले विषयों से निवृत ऐसे जो यमि अर्थात् योगिजन अपने अंतःकरण में अपने मनको धारनेवाले यानेस्थिरकरनेवालेजोकुछतत्त्वकोदेखकर जि

नके रोमांच खड़े होरहेहैं और आनन्द करके नेत्रमें जलभर आयाहै मानों वे अमृतके हृदय में गोतामें लगाय जो आनन्दको प्राप्त होते हैं सो निश्चय करके वह तत्व आपही हो ॥२५॥

त्वमर्कस्त्वंसोमस्त्वमसिपवनस्त्वंहुत वहःस्त्वमापस्त्वंव्योमत्वमुधरणिरात्मा त्वमिति परिच्छिन्नामेवंत्वयिपरिणता बिभ्रतिगिरंनविद्मस्ततत्त्वंवयमिहतुय त्वंनभवसि ॥ २६ ॥

हे भगवन् ! आपसूर्यहो, आप चन्द्रमाहो, आप वायुहो, आप अग्निहो, आप जलहो, आप स्वर्गहो, आप पृथ्वीहो और आत्माभी आपहीहो हे देवाधिदेव ! इस प्रकार आपमें जो ज्ञानी और भक्तजन परिच्छिन्न अर्थात्

देवताओं को धारण करता हुआ जो ओंकार कैसा कि तीर्णविकृति अर्थात निर्विकार और सूक्ष्म ध्वनियों से आपका जो तुरीय धाम याने जाग्रदादि अवस्थाओं से परे जो चतुर्थ धाम तिसे बता रहा है ॥ २७ ॥

भवश्शर्वोरुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह-महांस्तथाभीमेशानाविति यदभिधा-नाष्टकमिदंअमुष्मिन्प्रत्येकंप्रविचरति देवश्रुतिरपि प्रियायस्मैधाम्नेप्रणिहि-तनमस्योऽस्मिभवते ॥ २८ ॥

हे देव ! भव शर्व, रुद्र पशूपत्ति, उग्र महादेव भीम, ईशान, यह जो आपके नामका अष्टक है इस प्रत्येक नाममें श्रुतियां विहार करती हैं इसलिये ऐसा जो प्रियधाम आप तिन के अर्थ में नमस्कार करता हूं ॥ २८ ॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदवद विष्ठायच नमो नमः क्षोभिष्ठायस्मरहरमहिष्ठाय च नमः नमो वर्षिष्ठायत्रिनयनयविष्ठा यचनमो नमः सर्वस्मैतेतदिदमतिसर्वायचनमः ॥ २९

हे शिव ! नेदिष्ठ अर्थात् अत्यन्त समीप ऐसे आपके अर्थ नमस्कार है, और दविष्ठ अर्थात् अत्यन्त दूर रहने वाले ऐसे आप के अर्थ नमस्कारहै क्षोदिष्ठ अर्थात् परमसूक्ष्मआपके अर्थ नमस्कारहै हेस्मरहर ! याने काम देवको जलाने वालेजो आप महिष्ठ याने अत्यन्त वृद्ध आपके अर्थ नमस्कारहै. हे त्रिनयन ! यविष्ठ अर्थात् अत्यन्त युवा (ज्वान) अवस्थावाले आपके अर्थ नमस्कार है और

समस्तको उल्लंघके जाने वाले आपके अर्थ नमस्कार है ॥

बहलरजसेविश्वोत्पत्तौ भवायनमो नमः प्रबलतमसे तत्संहारे हरायनमो नमः॥जनसुखकृतेसत्वोद्रिक्तौमृडाय नमोनमः प्रमहसिपदेनिस्त्रैगुण्येशिवा यनमो नमः ३० ॥

हे शिवजी ! जगत के उत्पत्तिके अर्थ परम रजो गुण रूप धारण किये ऐसे जो आप भव तिनको वारंवार नमस्कार हो और उसके (जगत के) संहार करनेमें गुणको धारणकरनेवाले हर तिनके अर्थ पुनः २ नमस्कार हो जगत् के सुख के अर्थ सत्वगुणके उत्पन्न करने वाले जो आप मृड तिनको वारम्वार नमस्कार

असितगिरिसमंस्यात्कज्जलंसिंधु-
पात्रे सुरतरुवरशाखालेखनीपत्रमुर्वी ।
लिखति यदिगृहित्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तवगुणानामीशपारंन याति ३१

हे ईश !-असित याने काले पर्वतके समान
काजल स्याही समुद्र रूप पात्रमें होवे सुर-
तरु कल्पवृक्ष के साखाकी उत्तम लेखनी हो
और पत्र पृथ्वी हो इत्यादि साधनों कोलेकर
यदि शारदा सर्वकाल लिखतीरहै तथापि आ-
पके गुणों का पार नहीं पाता मैं तो कौन प-
दार्थ हूं ॥ ३२ ॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येंदुमौले ग्रं
थितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ॥
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ३२

हे शिव ! दीक्षादान, तप, तीर्थ, यज्ञ योगादि क्रिया व सब आपके उस महिम्न स्तोत्र पाठ की सोलवीं कलाको भी प्राप्त नहीं होते हैं ॥

आसमाप्तमिदंस्तोत्रं पुण्यंगंधर्वभाषितम् ॥ अनुपममनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥ ३६ ॥

अनुपम और मनको हरने वाला और ईश्वर वर्णनात्मक और पवित्र पुष्पदन्त गंधर्व का कहा हुआ यह स्तोत्र समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

महेशान्नापरोदेवो महिम्नो नापरास्तुतिः । अघोरान्नापरो मन्त्रोनास्तितत्वंगुरोः परम ॥ ३७ ॥

महादेव जी से परे कोई देव नहीं महिम्न से परे दूसरा कोई स्तोत्र नहीं अघोर से परे कोई मन्त्र नहीं और गुरु से कोई तत्व नहीं है ॥ ३७ ॥

कुसुमदशननामासर्वगंधर्वराजः शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्यदासः ॥ सखुलनिजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषा स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यंमहिम्नः ॥ ३८ ॥

ये पुष्पदन्ताचार्य जो पहिले गंधर्व योनि में कुसुमदशन नाम गंधर्व थे किसी समय एकान्तमें शिवजी और पार्वती जी की आनन्द की बातें छिपकर सुनने लगे तो शिवजी ने देखतेही इनको यह शाप दिया कि जाओ तुम इस गंधर्व पदवीसे पतित होकर मनुष्य लोक में जन्मलो तब इन्होंने यहां जन्म लेकर परम-दिव्य इस महिम्न स्तोत्रसे शिवजी को अत्यन्त प्रसन्न कर मनोवांछित फल प्राप्त किया ॥ ३८ ॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं । पठति यदि मनुष्यः प्रांजलिर्नान्यचेताः॥व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः । स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्त प्रणीतम् ॥ ३९ ॥

पुष्पदन्ताचार्यका कथित जो निर्दोष महिम्न स्तोत्र वह कैसा है कि देवता और मुनियों करके पूजित और स्वर्ग मोक्ष प्राप्ति का मूल कारण है ऐसे स्तोत्रको जो मनुष्य स्थिर चित होके हाथ जोड़कर पढ़ताहै वह शिवजी के समीप प्राप्त होता है उसकी स्तुति किन्नर गंधर्व आदि करते हैं ॥ ३९ ॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतेन । स्तोत्रेणकिल्बिषहरेणहरप्रियेण॥ कंठस्थितेनपठितेनसमा

हितेन । सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४०॥

श्रीपुष्पदन्ताचार्य के मुखारविन्द से कहा हुआ जो यह पाप नाशक महिम्न स्तोत्र है चित्त लगाकर इसके कण्ठ पाठ करने से भूतपति जी श्री महादेवजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं क्योंकि शिवजी को यह स्तोत्र अत्यन्त प्रिय है ॥ ४० ॥

एककालंद्विकालंवात्रिकालन्नित्यमुत्पठेत् ।
भवपाश विनिर्मुक्तः शिवलोकंसगच्छति ॥४१॥

जो मनुष्य इस महिम्नस्तोत्र को एक बार या दो बार वा तीनबार नित्य पढ़ेगा वह संसार की फांसीसे छूटकर शिव लोक में प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥

इत्येषावाङ्मयीपूजाश्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पितातेनमेदेवःप्रीयतांचसदाशिवः ॥ ४२ ॥

यह स्तोत्र रूपी पूजा श्रीमहादेवजी के चरण कमल पर मैं [पुष्पदन्ताचार्य] ने चढ़ाहै । उस से श्रीसाम्ब सदाशिव मुझपर सन्तुष्ट हों ।

शिवमहिम्न स्तोत्रम्

सम्मति पुस्तकालय, बनारस ।